



ॐ

# प्रयोजन सिद्धि

संकलनकर्ता

पूज्य भाईश्री शशीभाई



प्रकाशक

श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट

भावनगर



प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान

श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट

५८०, जूनी माणेकवाडी,

भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) २४२३२०७ / २५१५००५

चतुर्थावृत्ति : प्रत : ५०० (१०-५-२००५)

पृष्ठ संख्या : ४ + ३६ = ४०

लागत मूल्य : ८/-

विक्री मूल्य : ५/-

टाईप सेटिंग :

पू.गा इम्प्रेसन्स

१०७५/ए, मातृछाया-४,

आंबावाडी, भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) २२०३४७०

मुद्रक :

गावती ऑफसेट

१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड

बारडोलपूरा, अहमदाबाद

फोन : (०७९) २१६७६०३

## प्रकाशकीय निवेदन

(चतुर्थ आवृत्ति)

वर्तमान काल में आध्यात्मिक क्रांति फैलानेवाले परम कृपालु परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री 'कानजीस्वामी' ने सुदीर्घ काल पर्यन्त जिस एक मुख्य विषय पर प्रवचन दिये उस मूल प्रयोजनभूत विषय को संजोकर इस लघु पुस्तिका द्वारा प्रकाशित करने में हमें हर्ष हो रहा है। पाठकों की मांग के अनुसार इस पुस्तिका की चतुर्थ आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है।

प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माता बहिनश्री 'चंपाबहन' के वचनामृत व उसी प्रकार उनकी प्रत्यक्ष चर्चा का लाभ भी प्रस्तुत विषय के उजागर होने में उपकारी रहे हैं। उसी प्रकार कुछ ही समय पूर्व हुए आत्मज्ञ सत्पुरुष 'श्रीमद् राजचंद्रजी' के हस्तलिखित अन्तर्विचार व पत्र - विशेषतः प्रत्यक्ष सत्पुरुष की महिमा सम्बन्धी भी इस प्रस्तुत विषय के निरूपण में उपकारी रहे हैं। इस दृष्टि से उक्त उपकारी महापुरुषों के उपकार को आविर्भूत कर, अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक वन्दन कर, निम्न निवेदन हैं कि :-

अनंतकालसे संसारमें रुलती-भटकती हुई आत्माको निज-हितका प्रयोजन कहाँ है ? किस रीतिसे यह प्रयोजन सिद्ध हो ?- यह विषय अत्यन्त रहस्यमय और गुप्त रहा है।

अनादिसे अकारण ही दर्शनमोहवश जीव परमें सुख मान रहा है, जिससे वह पर-संयोगके पीछे दौड़ता है। वह भी इस हद तक कि अपना माना हुआ धर्म अर्थात् पुण्य कर्म करके तत्फलरूप अनुकूल संयोग पाकर सुखबुद्धिपूर्वक पुण्य कार्योंमें प्रवर्तन करता है। और कोई तो पूर्व पुण्यसे प्राप्त भोग-उपभोगके त्यागको ही

धर्म मानते हैं और बाह्य त्यागमें वर्तते हैं तो भी वे तो मात्र कषायकी मन्दता (पुण्यभाव) में ही काल व्यय करते हैं। परंतु वे परिभ्रमणके मूल कारणरूप 'दर्शनमोह' के अभाव करनेके विषयमें अनभिज्ञ होनेसे बाह्य-क्रियामें ही अटक जाते हैं। और कोई परलक्ष्यी शास्त्र अध्ययनको ज्ञान-क्रिया मानकर उसमें अटक जाते हैं। परंतु उससे भी प्रयोजनकी सिद्धि होती है या नहीं ?- उस बारेमें अनजान होनेके कारण मिथ्या सन्तोषमें काल बिता देते हैं। लेकिन ओघसंज्ञा पूर्वक की जाती ज्ञान, क्रिया, भक्ति आदिसे दर्शनमोह कहाँ व कैसे वृद्धिगत होता है ? अथवा यथार्थतासे उसका रस मन्द होकर सम्यक्-सन्मुख कैसे हो ?- ऐसे मूल प्रयोजनभूत विषयपर लक्ष्य ही नहीं जाता। तत्त्वका नित्य स्वाध्याय करनेवालेका इस प्रयोजनभूत विषयपर लक्ष्य जाये तथा सर्व मुमुक्षु जीवोंका श्रेय हो-इस भावनासे इस 'प्रयोजन-सिद्धि'का प्रकाशन हो रहा है। अस्तु -

भावनगर,

दि. ०४-०४-२००५

(पूज्य बहिनश्री चंपाबहन की

७३वीं सम्यक् जयंती)

ट्रस्टीगण

श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट

भावनगर

### दान राशि

श्रीमति चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर	२,१००/-
श्रीमति विमलादेवी हीरालाल जैन, भावनगर	२,१००/-
श्रीमती लक्ष्मीबहन खीमजीभाई गंगर, विलेपार्ला, मुंबई	१,०००/-

ॐ

नमः सिद्धेभ्य

# प्रयोजन सिद्धि

जीव अनादि कालसे संसारमें चार गतिमें, भव-भवांतरमें परिभ्रमण कर रहा है। इस परिभ्रमणका मूल मिथ्यात्वभाव व अज्ञान है, उनका नाश होनेसे सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान प्रगट होता है जिससे परिभ्रमण मिटता है, यानी मोक्ष होता है। अतः सम्यक्दर्शन ही मोक्षका मूल है। उस सम्यक्दर्शनका प्रतिबंधक भाव ही दर्शनमोह / मिथ्यात्व है। इस भावकी शक्तिको तोड़नेरूप परिणाम कैसे होते हैं ? और वैसे ही उस भावको अधिक पुष्ट करनेवाले परिणाम कैसे होते हैं ? - वे आत्म-हितके लिए समझने योग्य हैं। जिज्ञासुको प्रयोजनकी मुख्यता रहती है, ऐसे जीवको उपकारभूत होनेकी दृष्टिसे उपरोक्त विषयपर प्रकाश डालनेवाले सत्पुरुषोंके कितने ही वचनामृत यहाँ उद्धृत किए हैं। इस संदर्भमें मिथ्यात्वसे हो रहे भयंकर नुकसानको दर्शाते हुए "पूज्य गुरुदेवश्री कहानजीस्वामी" कहते हैं कि :-

'पुण्य-पुण्य कह कर अज्ञानी मिठासको वेदता है, पर पुण्यकी मिठास तो उसका खून करती है। मिथ्यात्वभाव कसाईखाना है। मिथ्यात्वका पाप तो सप्त व्यसनसे भी अनंतगुणा अधिक है। जो उसका पोषण करते हैं, उन्होंने तो कसाईखाने खोल रखे

हैं।' (-परमागमसार, आंक-२५०)

'परसत्तावाले तत्त्वोंको अपनातेका अभिमान, परसत्तावाले तत्त्वोंको त्यागनेका अभिमान-यह अभिमान ही मिथ्यात्व है। और वह सप्त व्यसनके पापसे भी महान पापरूप है।' (-परमागमसार, आंक-३१२)

'अपने सत्य मानेंगे तो अपना लोकसे व्यवहार नहीं रहेगा - ऐसा विचार छोड़ दे। मौत आने पर दुनिया साथ नहीं आयेगी। स्त्री-सेवनके पाप व माँस-भक्षणके पापसे भी मिथ्यात्वका पाप अनंतगुणा अधिक है। देवको कुदेव मानना, कुदेवको देव मानना, कुगुरुको गुरु मानना, कुशास्त्रको शास्त्र मानना आदि प्रकारकी मिथ्या मान्यता माँस-भक्षण व शिकारके पापसे भी महान पाप है। सात तत्त्वकी विपरीत मान्यता भी महान पाप है। लोगोंको इस पापका अंदाज ही नहीं है। अन्य जीवकी अवस्था आत्मा कर सकता है, लोग ऐसा मानते हैं। कुदेवको मानने जैसा व सात तत्त्वकी विपरीत मान्यता जैसा बड़ा पाप जगतमें कोई नहीं है।' (-परमागमसार, आंक-९२८)

मिथ्यात्व - (दर्शन)मोहनीयकी भयंकरता-विषयक 'श्रीमद् राजचंद्रजी'के निम्न मार्मिक उद्गार गवेषणीय हैं :-

'हे नाथ ! सातवीं तमतमप्रभा नरककी वेदना मिली होती तो शायद मान्य करता, परंतु जगतकी मोहिनी मान्य नहीं होती।' (-पत्रांक-८५)

इस विषयके अनुसंधानमें 'श्रीमद्जी'ने मोहनीयकर्मकी तुलनामें शेष कर्मोंके सम्बन्धमें अपना अभिप्राय निम्न प्रकार व्यक्त किया है :-

'आठ कर्मोंमें चार कर्म घनघाती हैं। उन चारोंमें भी मोहनीय

अत्यंत प्रबलतासे घनघाती है। मोहनीयकर्मके सिवाय सात कर्म हैं, वे मोहनीयकर्मके प्रतापसे प्रबल होते हैं। यदि मोहनीय दूर हो जाये तो दूसरे कर्म निर्बल हो जाते हैं। मोहनीय दूर होनेसे दूसरोंका पैर टिक नहीं सकता।' (-व्याख्यानसार-१/६४)

इस संदर्भमें 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' (पृ. ३२) का निम्न वाक्य भी अवधारणीय है :-

'सब कर्मोंमें मोहनीय कर्म ही प्रधान और बलवान है। उसके अभावमें शेष सभी कर्म केवल निस्तेज ही नहीं हो जाते, किन्तु संसार-परिभ्रमणका चक्र ही रुक जाता है।'

उक्त तथ्यके समर्थनमें 'षट्खण्डागम / जी. १.१.१. / २२ पृ. २४ से उद्धृत मंतव्य भी मननीय है :-

'बाकीके समस्त कर्म मोहके अधीन हैं। मोहके बिना शेष कर्म अपने अपने कार्यकी उत्पत्तिमें व्यापार करते हुए नहीं पाये जाते हैं। जिससे कि वे भी अपने कार्यमें स्वतंत्र समझे जाय। इसलिए सच्चा अरि मोह ही है और शेष कर्म उसके अधीन हैं।'

मोहनीयमें भी दर्शनमोहकी प्रबलतासे ही चारित्रमोहका बल रहता है। दर्शनमोहका नाश होने पर चारित्रमोह टिक नहीं सकता। अतः आत्माका सर्वाधिक अहित करनेवाला दर्शनमोह है। और इसीलिए दर्शनमोहका नाश करनेवाले सम्यक्दर्शनकी महिमा जिनागममें पग-पग पर देखनेमें आती है। 'श्रीमद्जी' लिखते हैं कि :-

'इस अनादि-अनंत संसारमें अनंतानंत जीव तेरे (सम्यक्दर्शनके) आश्रयके बिना अनंतानंत दुःखोंका अनुभव करते हैं।' (-हाथनोंध-२/२०)

‘श्री गोम्मटसारजीमें भी आचार्यदेव फरमाते हैं कि :-

‘मिथ्यात्व, यह सम्यक्दर्शनका ठीक विरोध भाव है।’

‘सम्यक्दर्शनके साहचर्यके बिना संवर निर्जरा नहीं हो सकती, यह ध्रुव नियम है।... इससे मोक्षमार्गमें सम्यक्दर्शनकी असाधारणता सूचित हो जाती है।’

इस प्रकार जीवके अनंत दुःखके मूलरूप दर्शनमोहका परिणाम, जिस भावका रस तीव्र और मंद-ऐसे दो प्रकारसे प्रवर्तता है, सामान्यतः अगृहीत मिथ्यात्वरूप है तथा उसमें तीव्रता होने पर वह गृहीत मिथ्यात्व हो जाता है।

मंद मिथ्यात्वमें अनेक भेद पड़ते हैं, परंतु जो जीव सम्यक्-सन्मुखकी दशामें वर्तता है उसका दर्शनमोह अत्यंत मंद होता है, अर्थात् वहाँ दर्शनमोहकी शक्ति हीन हो जाती है - रस गलता है। परंतु जहाँ तक दर्शनमोहका अभाव (उपशम) नहीं होता, वहाँ तक सम्यक्दर्शन प्रगट होकर मोक्षमार्गका प्रारंभ नहीं होता और भव-भ्रमणकी अनंतताका छेद नहीं होता। अतः जब तक सूक्ष्म मिथ्यात्वका भी सद्भाव वर्तता है तब तक अनंत भव-भ्रमणका बीज जीवित रहता है - ऐसा समझकर उसका अभाव करनेके पुरुषार्थ हेतु अवश्य जागृत रहना योग्य है। अतएव दर्शनमोहके विषयमें ज़रा भी गफलतमें न रहें, अथवा कहीं भी, किसी भी प्रकारसे इसके फंदेमें फँस न जायें - यह निरंतर लक्ष्यमें रखना योग्य है।

मिथ्यात्व, अनंत संसारका कारण होनेसे उसके साथ अविनाभावीरूपसे प्रवर्तित अनुबंधी कषाय भी अनंतानुबंधी होती है। अतः प्रस्तुत प्रकरणमें तत्संबंधी प्रकाशन भी योग्य है।

निज-लक्ष्यसे परिणाम-अवलोकन होनेके उद्देश्यसे कतिपय



परिणामोंके विवरण द्वारा यहाँ कुछ भेद-प्रभेद जानने योग्य हैं।  
यदा :

(१) सरागी देव, सरागी गुरु, राग-वर्धक शास्त्रोंकी श्रद्धा, प्रशंसा, अनुमोदना, स्थापना आदि करनी, करवानी व अनुमोदना करनेसे दर्शनमोह तीव्र होकर गृहीत मिथ्यात्व होता है। उसी प्रकार वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु व उनके निरूपित शास्त्रकी निंदा, अवमानना, उत्थापना, विरोध आदि करने, कराने व अनुमोदनासे भी गृहीत मिथ्यात्व होता है। तथा उसके प्रतिपक्षरूप वीतराग सर्वज्ञदेव, भावलिंगी संत-गुरु और सत्शास्त्र प्रतिके बहुमान/भक्ति-भाव मिथ्यात्व-रसको मंद करनेवाले परिणाम हैं।

(२) वीतरागीदेव, गुरु, शास्त्रकी ओघसंज्ञारूप श्रद्धा कर्तव्य नहीं। अधिक समय तक ओघसंज्ञा रहने पर दर्शनमोह वृद्धिगत होता है। और देव-शास्त्र-गुरुके स्वरूपकी पहचानपूर्वक पूजादिसे दर्शनमोह मन्द होता है।

(३) अर्हतदेवके द्रव्य-गुण-पर्यायके स्वरूपकी पहचानकर अपने आत्म-स्वरूपकी पहचान करनेपर जीव दर्शनमोहका नाश कर सकता है।

“जे जाणतो अर्हन्तने गुण, द्रव्य ने पर्यय पणे;  
ते जीव जाणे आत्माने, तसु मोह पामे लय खरे।”

(श्री प्रवचनसार गाथा-८०)

(४) आत्म-स्वरूपकी पहचान करनेके उद्देश्य/हेतुसे तत्त्वज्ञानका अभ्यास करनेवालेका दर्शनमोह मन्द होता है। परंतु ओघसंज्ञासे अथवा आत्मार्थ सिवाय अन्य किसी भी लक्ष्यसे होनेवाला शास्त्राभ्यास दर्शनमोहकी वृद्धिका कारण है; भले ही शास्त्राभ्यास द्वारा क्षयोपशम बढ़ा हुआ हो तथा कषाय भी मन्द हुई हो।

(५) आत्म-स्वरूप प्राप्तिकी अत्यन्त भावनाके वश जिसे इस जगतमेंसे "कुछ भी नहीं चाहिए, एक मात्र अपनी आत्मा ही चाहिए"- उसके दर्शनमोहका रस घटता है। जिसको जगतके किसी न किसी पदार्थकी आवश्यकता लगती है उसको उक्त प्रकारकी भावना नहीं हो सकती; और ऐसे भावनाविहीन किसी भी प्रकारके परिणाम दर्शनमोह मिटानेमें कारणभूत नहीं होते।

(६) उक्त भावनाके कारण निज परम तत्त्वकी अपूर्व जिज्ञासा जगनेपर जीवको कहीं भी अच्छा नहीं लगता, और जिज्ञासापूर्वक स्वरूपकी खोजके तीव्र परिणाम निरन्तर रहा करते हैं- ऐसा जीव यथार्थ निर्णयकी भूमिकामें आने जितना दर्शनमोह मन्द करता है, परंतु तत्त्वज्ञानके वाचन-श्रवण द्वारा बहिर्लक्ष्यी उघाड़/धारणासे आत्माके विषयमें जानपना होनेपर जिज्ञासा खत्म हो जाती है, और धारणाके विषयका विकल्प द्वारा बारम्बार रटन होनेपर दर्शनमोह तीव्र होने लगता है।

(७) यदि प्रारम्भमें ही परिपूर्ण निर्दोषता/शुद्धताका लक्ष्य (ध्येय) बाँधनेमें न आये तो वास्तविक शुरुआत ही नहीं होती, यानी "पूर्णताके लक्ष्यसे ही वास्तविक शुरुआत होती है" दूसरे शब्दोंमें मुमुक्षुकी भूमिकामें यथार्थ प्रकारसे आगे बढ़ना होता है। वरना चाहे जैसे साधनसे शुरुआत करनेवालेका ध्येय अन्यथा होनेसे संयोग-प्राप्तिका लक्ष्य हो जाता है अथवा प्रशस्त रागका लक्ष्य हो जाता है अथवा अल्प विकसित दशाका लक्ष्य रहता है- जो सब दर्शनमोहके बढ़नेके ही कारण सिद्ध होते हैं।

(८) उक्त प्रकारसे पूर्णताके ध्येय पूर्वक, ध्येय-प्राप्तिकी पूरी लगन और संकल्पवाले परिणाम दर्शनमोहको उत्तरोत्तर मन्द करते हैं। परंतु लगनके अभावमें प्रमाद रहा करता है जो आत्मगुणको

दबा डालता है, अर्थात् स्वयंको खबर ही न पड़े/खयाल ही में न आये-ऐसे अहितरूप प्रमादके परिणाममें जीव वर्तता है और वह सम्यक्त्वसे दूर चला जाता है।

(९) उपरोक्त आत्म-भावना, जिज्ञासा, लगन, ध्येयका लक्ष्य आदि भावोंसे परिणाम स्व-लक्ष्यी होते हैं, अर्थात् निजहित-अहितरूप प्रयोजनके विषयमें उपयोग सूक्ष्म और तीक्ष्ण होकर प्रवर्तित होता है। तब स्वयंके दोष अपक्षपातरूपसे दिखते हैं और उन्हें मिटानेका ध्यान रहा करता है- इससे भी दर्शनमोहका रस टूटता है। परंतु जिसकी प्रयोजनभूत विषयमें स्थूलबुद्धि है, वह अप्रयोजनभूत विषयमें रस लेता है और निज-प्रयोजनके विषयको नहीं पकड़ पाता, वह भी दर्शनमोहको वृद्धिगत करता है।

(१०) पूर्वके कई विपरीत संस्कारोंके कारण जीव मिथ्या आग्रहमें वर्तता है, जिससे असत्य या दोषका पक्ष होता है; अथवा असरलता/हटाग्रहताके परिणामोंकी प्रबलता रहती है; अथवा पूर्वमें की हुई अयथार्थ समझकी पकड़से जीव छूट नहीं सकता -वहाँ दर्शनमोह तीव्र होता है। आत्मार्थी जीव तो पूर्वाग्रह छोड़नेकी तत्परता/अभिप्रायवाला, मध्यस्थभावमें वर्तन करनेवाला, सरलतासे वर्तन करनेवाला अथवा सरलतासे अपने दोष स्वीकार करनेवाला, सत्य/सत्को आत्मसात् करनेकी वृत्तिवाला होनेसे उसमें दर्शनमोहका अभाव करनेका सामर्थ्य खिलता (पनपता) है।

(११) और, दर्शनमोहसे वही जीव छूट सकता है जिसे अपने अनन्त भव-भ्रमणसे होते दुःखोंका त्रास लगा हो, भवभ्रमणके कारणरूप दूषित परिणामोंका भय लगता हो अथवा संसारसे भयभीत हो और जन्म-मरणसे छूटनेका मार्ग खोजता हो। परंतु जो जीव मात्र प्रतिकूलताओंको टालने या अनुकूलताओंकी इच्छासे पुण्यभावमें

प्रवर्तता हो और जिसे भव-भ्रमणका भय न हो उसका दर्शनमोह नहीं छूटता।

(१२) जो जीव शुभरागका समर्थक है, जिसे शुभरागकी महत्ता है व इसी कारणवश जिसे शुभका आग्रह बन गया है अथवा जो शुभमें सन्तुष्ट हो गया हो- वह जीव भी दर्शनमोहको पुष्ट करता है। परंतु मोक्षार्थी जीव तो "पूर्ण शुद्धताके लक्ष्यसे ही पुरुषार्थ करता है।" उसे अपने उच्च कोटिके शुभपरिणाम होने पर भी उनमें विभावरूप तुच्छता लगती है, अतः उनकी महत्ता नहीं भासती व ऐसे भावों पर वजन नहीं जाता; बल्कि शुद्धता प्रगट करनेके बजाय स्वयं शुभमें रुका रहता है सो खटकता है; उसे शुद्धता प्रगट न होनेका असंतोष रहता है; चाहे जैसे शुभभावमें भी नहीं अटकता, अतः वह दर्शनमोहका अभाव कर शुद्धता प्राप्त कर लेगा।

(१३) सत्पुरुषोंकी शिक्षा यह है कि - "सर्व उदयमान प्रसंगोंमें रस मन्द कर प्रवर्तित होना, राग से विरक्त होना, क्योंकि रागमें रहा हुआ रस/चिकनापन तथा रागमें सावधानी दर्शनमोह वर्धक है।" अतः उपयोग देकर भी राग-रस मन्द होने पर व रागकी अरुचि होनेपर दर्शनमोह मन्दताको प्राप्त होता है। राग-प्रवृत्तिमें उत्साह लाना योग्य नहीं।

(१४) जगतके बाह्य पदार्थों सम्बन्धी कुतूहल अथवा आगमके अप्रयोजनभूत विषयोंकी विशेष जानकारी पानेका कुतूहल अथवा परलक्ष्यी ज्ञानादि भावकी प्रवृत्ति दर्शनमोह वर्धक है। परंतु मुमुक्षुकी भूमिकामें तो स्वलक्ष्यी परिणाम व निजावलोकन होना ही योग्य है; उसी प्रकार प्रयोजनभूत विषयका श्रवण-मनन आत्मरुचिको उग्र करता है और तब दर्शनमोह मन्द होता है।

(१५) 'विकल्पमात्रमें दुःख है'- ऐसा होनेपर भी दर्शनमोहके

कारण जीव कितने ही विकल्पोंमें सुखकी कल्पना करता है अथवा आत्मिक सुखके भाव-भासन बिना मन्द कषाय युक्त परिणाममें/शाताके वेदनमें जीवको सुखाभास होता है। परंतु आत्मारथी जीवको भेदज्ञानके अभ्याससे विकल्पमें दुःख लगता है जिससे उसकी अंतर्वृत्ति विकल्पमात्रसे हटनेकी हो जाती है व इस कारणसे उसे निर्विकल्पदशा होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। -ऐसे दर्शनमोहके छूटनेसे विकल्प (आत्मस्वभाव प्रतिके विकल्प तक) दुःखरूप व आकुलतामय लगता है, जिस कारणसे किसी भी विकल्पमें रुकनेका अवकाश नहीं रहता और तब तुरन्त ही निर्विकल्पदशाकी समीपता होती है।

(१६) गुणग्राहिता व गुणप्रमोद दर्शनमोहको मन्द करनेवाले हैं। परंतु दर्शनमोह तीव्र होनेपर दोषभावमें भी गुणकी कल्पना हो जाती है अथवा गुणको दोषकी कोटिमें गिनना हो जाता है। निज-दोषका बचाव/पक्षपात करना; जिसके प्रति राग हो ऐसे व्यक्तिके दोषका बचाव करना आदि प्रकार भी उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण गुणवान व्यक्तिका अवर्णवाद भी हो जाता है जो दर्शनमोह वर्धक है।

(१७) ज्ञानके क्षयोपशम व चारित्रगुणके क्षयोपशमवाले परिणाम होनेपर उनमें संतुष्ट होना, उनकी महत्ता करना, गणना होना इत्यादिक प्रकार दर्शनमोहकी वृद्धिके कारण हैं। परन्तु दर्शनमोहका नाश करनेवाला जीव अपनी दशामें दया, शांति, नम्रता, क्षयोपशम, गम्भीरता, उदारता व वैराग्य आदि गुण प्रगट होनेपर भी उसे "अभी बहुत बाकी है"....ऐसा लगा करता है। उसको प्राप्त गुण गौण हो जाते हैं, उनकी गिनती या मुख्यता नहीं होती।

(१८) दर्शनमोहको दूर करनेवाला जीव गहन मंथन और

चिंतनपूर्वक सत्शास्त्रोंका (स्वलक्ष्यी) अध्ययन करता है, उससे चैतन्य-रुचिका पोषण करता है और चैतन्यतत्त्वका घूँटण करता है। जब कि रुढ़िगत ढंगसे व परम्पराकी दृष्टिसे शास्त्राभ्यास करनेवाला, क्षयोपशमकी रुचिका पोषण करनेवाला, इन्द्रियज्ञानके उघाड़के रसमें उत्साहित होनेवाला उन-उन भावोंमें राग-रुचि वृद्धिगत कर दर्शनमोह पुष्ट करता है।

(१९) स्वरूप-विचारणाके कालमें अभेद/सामान्य स्वरूपका रस और रुचि दर्शनमोहका हास होनेमें कारणभूत होते हैं। वहाँ, विचारणामें भेद जानने पर भी वे गौण होकर अभेदके प्रति ही मुख्यरूपसे झुकाव रहता है। परंतु तत्त्वज्ञानके विचारोंमें भेद-प्रधानतासे, अर्थात् भेदकी रुचिसे भेद-कल्पना दृढ़ होकर दर्शनमोहमें वृद्धि होती है।

(२०) मुमुक्षु जीवको अन्तर्मुखी चिंतनकी विचारधारामें ज्ञान लक्षणसे ज्ञान-स्वभावकी पहचान/यथार्थ स्वरूप-निश्चय होने पर, स्वरूप-सन्मुख होनेसे दर्शनमोहका रस अत्यन्त क्षीण होता है; कारण कि प्रतिभासित निज स्वरूप निर्मोही तत्त्व है और स्वभावसे मोहका घातक है। परंतु बहिर्मुखी विचारोंसे मात्र तर्क-युक्ति-न्याय और शास्त्राधारसे कल्पित अथवा अन्य गुणको लक्षण बनाकर अयथार्थ निर्णय होनेसे वैसी कल्पना दृढ़ होनेसे मिथ्यात्व तीव्र होता है।

(२१) मुमुक्षुकी भूमिकामें अन्तर्मुख होनेके लिए अनुभूतिका मार्ग/उपायरूप मूल मात्रको ही खोजनेवाले मुमुक्षुका दर्शनमोह तो उस कालमें मन्दताको प्राप्त होता है। "मार्गकी खोज जितनी उग्र, उतनी ही मार्गकी समीपता होती है।" जब कि मार्गकी संशोधकवृत्तिके अभावमें जीव धारणाकी प्रधानतामें रुक जाता है अथवा खण्डन-मंडन या विधि-निषेधके भेदों या नय-भंगमें अटक कर दर्शनमोहकी

वृद्धि करता है।

(२२) दर्शनमोहकी प्रबलताके कारण "स्वानुभव-प्राप्ति कठिन है/दुर्गम है, बहुतसे जीव प्रयत्न करने पर भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर पाते" इत्यादि परिणाम और अभिप्राय वर्तते हैं। उसरूप कर्तव्य होने पर भी, वैसा माननेपर भी "बादमें करूँगा...बादमें.... करूँगा... पहले अमुक कार्य करनेके बाद करूँगा..."- ऐसे परिणाम दर्शनमोहकी प्रबलता दर्शानेवाले हैं। आत्मार्थीको तो शीघ्रतासे आत्मकार्य कर लेनेके अभिप्रायपूर्वक प्रवृत्ति होती है, जिस कारणसे उस अप्रयोजनभूत विषयमें व्यर्थ समय गँवाना सहन नहीं होता, उधरका ही खिँचाव रहा करता है।

(२३) स्वरूप-सम्बन्धी सूक्ष्म बोधकी अभिलाषासे दर्शनमोह मन्द होता है। परंतु दर्शनमोहकी तीव्रता होनेपर सत्पुरुषके श्रीमुखसे स्वरूपका सूक्ष्म बोध निर्झरित होता हो तब भी वहाँ लक्ष्य नहीं रहता, अन्य भावोंमें उपयोग खोया रहता है। प्रबल दर्शनमोहवाले जीवको तो पारमार्थिक बोध चर्चित होता हो तब तन्द्रा या निद्रा जैसी स्थिति वर्तती है।

(२४) लौकिक संज्ञा या लौकिक अभिनिवेशके कारण जीवकी दृष्टि लोगों पर रहती है। समाज अथवा लोककी दृष्टिमें अपना दिखाव या स्थान प्राप्त करनेकी कल्पनापूर्वक कोई भी प्रवृत्ति करते हुए दर्शनमोह पुष्ट होता है। परंतु आत्महितकी मुख्यतावाला जीव तो मान / स्थान मिलनेके प्रसंगोंसे दूर भागनेकी सहज वृत्तिमें रहता है। अपनी योग्यता विशेष हो तो भी उसका गोपन / दबाकर रहना चाहता है, ताकि पर-संग और पर-परिचय न बढ़े व स्वकार्य और असंगवृत्तिको पोषण मिले।

उपदेश नोंध (२) में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि :

“धर्ममें लौकिक बड़प्पन, मान, महत्त्व आदि की इच्छा, यह तो धर्मके द्रोहरूप हैं। ...धर्मका महत्त्व तो बहानारूप है और स्वार्थ सम्बन्धी मान आदिका प्रश्न मुख्य है, यह धर्मद्रोह ही है।”

(२५) ओघसंज्ञापूर्वक प्रवर्तते जीवका कभी कल्याण नहीं होता। क्योंकि ओघसंज्ञामें जीवको 'धर्मकी वास्तविक जरूरत ही नहीं लगती, तब दर्शनमोह कैसे मिटे ? परंतु जिस जीवको चार गतिके समस्त प्रकारके दुःखके अभाव और वैसे ही सादि अनन्त कालके परिपूर्ण अनन्त सुख-समाधिकी प्राप्तिका यथार्थ मूल्यांकन हो उसे ही धर्मका मूल्य समझमें आता है, उसे ही वास्तविक जरूरत लगती है, अतः वह सत्पुरुषार्थमें सहज ही प्रवृत्त होता है और उसका दर्शनमोह नष्ट होता है।

(२६) रूढ़िगत धर्म-क्रियामें जीव अनेक प्रकारके छोटे-छोटे दोषोंको टालनेकी मुख्यता रखता है, परन्तु दर्शनमोह और अज्ञान जैसे महा दोषोंके निवारणहेतु दुर्लक्ष्य रखता है। वह मिथ्यात्व और अज्ञानसे होनेवाले नुकसानकी गम्भीरतासे अनभिज्ञ रहता है, अतः वह दर्शनमोहको पुष्ट करता है। इसके विपरीत सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञानके स्वरूपकी समझपूर्वक महिमा आने और मुख्यता होनेपर जीव दर्शनमोहके महादोषको दूर करनेका प्रयत्न करता है।

(२७) जीव निज-हितके विषयमें जितना जरूरतमन्द हो उसी अनुपातमें उसका दर्शनमोह मन्द पड़ता है। उसे 'मार्ग पानेपर ही छुटकारा है' - ऐसी बेचैनी और अधीरता रहती है। जब कि अन्य जीवोंको तत्त्वज्ञानका विषय मात्र मनोरंजनका एक प्रकार बन जाता है, जिससे जागृतिका अभाव वर्तता है और दर्शनमोह वृद्धिगत होता है।

(२८) उदयकाल में अभिप्रायपूर्वक परपदार्थमें इष्ट अनिष्टपना



होनेपर दर्शनमोह बढ़ता है, क्योंकि उसमें निज ज्ञायकको भूलकर परमें एकत्व भावसे प्रवर्तन होता है। परन्तु 'मैं मात्र ज्ञायक हूँ - ऐसी जागृतिपूर्वक, और कोई पदार्थ भले या बुरे नहीं हैं - ऐसे अभिप्राय सहित, उदयकालके समस्त परपदार्थ मात्र 'ज्ञानके ज्ञेय हैं' - ऐसे उपयोग / सावधानीरूप अभ्यास / प्रयत्नसे दर्शनमोह टूटता है।

(२९) मार्ग प्राप्तिकी यथार्थ विधिरूप भेदज्ञानका प्रयोग समझनेके समय, प्रयोगके विषयके विश्लेषणको परलक्ष्यीज्ञानमें मात्र धारणाका विषय बना लेनेसे तथा उस विषयकी समझप्राप्तिमें संतुष्ट होनेसे दर्शनमोहमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । परन्तु ज्ञानको धीर और सूक्ष्मकर अन्तर्मुख होनेसे विधिरूप ज्ञानमें अस्तित्व ग्रहण करनेके प्रयोगाभ्याससे दर्शनमोह घटता है।

(३०) समस्त न्याय और नयके पहलुओंकी समझसे प्रयोजनकी मुख्यतामें रहना व तदनुसार अन्तर-गवेषणा चलना दर्शनमोह मन्द होनेका कारण है। परन्तु अनेक प्रकारसे न्याय और नयके विषयको समझते हुए मूल प्रयोजन गौण हो जाये तो दर्शनमोह वृद्धिगत होता है।

(३१) जगत्के किसी भी पदार्थ में सूक्ष्मरूपसे भी सुखकी कल्पना अर्थात् सुख-बुद्धि रह जानेसे बाह्य पदार्थकी महत्ता बनी रहती है जिससे दर्शनमोह वृद्धिगत होता है। परन्तु आत्मार्थी जीवको तो 'जगत् इष्ट नहीं आत्मसे' - इस सिद्धान्तके ग्रहणसे सम्पूर्ण जगत्के प्रति उदासीनता रहती है; वैसे ही आत्मिक आनन्दकी भावनापूर्वक जितेन्द्रियता होती है; उसे बाह्य विषयोंकी महत्ता नहीं होती, उनमें सुखाभास नहीं होता, वरन् आकुलताके कारण लगते हैं अतः उसका दर्शनमोह घटता है।

(३२) दर्शनमोहको सबसे अधिक तीव्र करनेवाला महादोष 'स्वच्छन्द' है, जिसको भली भाँति समझना आवश्यक है। श्रीमद्गी कहते हैं कि :

“रोके जीव स्वच्छन्द तो, पामे अवश्य मोक्ष;  
पाम्या एम अनन्त छे, भाख्युं जिन निर्दोष।”

(आत्मासिद्धि शास्त्र - १५)

- ऐसे स्वच्छन्दके सदभाव (\*) और अभाव (o) दर्शानेवाले कितने ही भावों सम्बन्धी विवरण निम्न हैं :

\* शास्त्र-संगत या विसंगत ज्ञानके क्षयोपशम सम्बन्धमें 'मैं समझता हूँ' - ऐसा भाव रहा करना व उससे जिज्ञासाका अभाव रहना।

o ज्ञानका क्षयोपशम विशेष शास्त्रोंके अनुकूल होने पर भी अपूर्व दशा / निरावरणताकी अप्रगटताका जिज्ञासापूर्वक भान रहना।

\* सत्पुरुषके वचनमें शंका व उस अनुरूप भूल देखनेकी वृत्ति रहना / होना, अर्थात् गाथार्थ या शब्दार्थकी मुख्यताकर भूल निकालना / समझना।

o सत्पुरुषके वचनमें निःशंकता पूर्वक परम प्रीति होना।

\* सत्पुरुषमें श्रद्धाका अभाव व तदनुसार अभक्तिके परिणाम होना।

o सत्पुरुष, यानी प्रगट सत्-जीवंत सत् है, ऐसा जानकर उनके प्रति अटल श्रद्धा, दृढ़ आश्रय और अतुल भक्ति होना।

\* सत्पुरुषका विरोध / अवर्णवाद करना।

o सजीवनमूर्तिको परम हितका कारण जानकर एक निष्ठा व सर्वार्पणबुद्धिपूर्वक उनकी महिमा आना, आज्ञाशीलतासे वर्तन

**करना, उनका गुणानुवाद करना।**

\* चैतन्यको स्पर्श कर निर्झरती सत्पुरुषकी वाणीका प्रत्यक्ष श्रवण होनेपर भी अहोभावका अभाव यानी उपेक्षाभाव रहना, निरुत्साहितभाव रहना।

○ अत्यन्त महिमापूर्वक और अत्यन्त जिज्ञासामें रहकर सत्-श्रवण करना अथवा श्रवणकालमें उस वाणीका मुमुक्षुके अन्तरंगको छूना।

\* सत्पुरुषके प्रति विनय-भक्तिमें न्यूनता, 'मुझे आता है' - ऐसा गरूर चढ़ना।

○ सत्पुरुषकी अन्तरंग दशाको पहचानकर परम दैन्यत्व-परम विनयशीलता रहनी, अपनी लघुता / हीनताका भान रहना।

\* सत्पुरुषके चारित्रदोषके प्रति लक्ष्य रहना, उसकी मुख्यता होना।

○ सत्पुरुषके अलौकिक चारित्रको लक्ष्यमें लेकर पुरुषार्थकी प्रेरणा पाना।

\* सत्पुरुषकी लोकभय, समाजभय, अपकीर्तिभय अथवा अपमानभयसे उपेक्षा होना या विमुखता होना।

○ समाजको गौणकर, मान-अपमानको भी गौणकर, सत्समागको परम हितका कारण जानकर उसकी उपासना करनी।

\* सत्पुरुषकी अपेक्षा कुटुम्ब-परिग्रहादिके प्रति अधिक राग रहना।

○ कुटुम्ब-परिग्रहादिकी तुलनामें भी सत्पुरुष-प्रतिकी अधिकता होना सो प्रगट सत्का मूल्यांकन है - ऐसी समझपूर्वक आदर होना।

\* अपनी कल्पनानुसार अथवा सत्पुरुषकी अपने अनुसार कल्पना

कर उनके वचनोंका तोलन करना अथवा उनका लौकिक रूपसे अर्थ घटन करना या उनको भावुकता, अतिशयोक्ति या अजागृत उपयोगके रूपमें वचनालाप गिनना / समझना।

○ ज्ञानीके वचनको अलौकिक अर्थमें घटाना, उनके वचनोंमें गर्भित परमार्थको समझनेका दृष्टिकोण रखना, अर्थात् उनमें समाहित मार्गकी विधिके गम्भीर रहस्यकी गहन चिंतनसे शोध करना।

\* प्रत्यक्ष सत्पुरुषका योग होनेपर भी शास्त्र-स्वाध्यायको अधिक महत्त्व देकर सत्संगको गौण करना।

○ सत्पुरुष-समागमको शास्त्र-स्वाध्यायसे भी अधिक उपकारी समझना और उसे मुख्यकर उसकी उपासना करना।

\* सत्पुरुषके उपकारको छिपाना / भूलना अथवा उनके उपकारकी उपेक्षा करना या अपने गुरुके अप्रसिद्ध होनेसे उनको गोपनकर प्रसिद्ध ज्ञानीका नाम (मानार्थ) प्रगट करना।

○ सत्पुरुष गुरुके उपकारको अगोप्य रीतसे प्रसिद्ध करना और उनके उपकारका सर्वोत्कृष्ट रूपसे महिमा-गान करना।

\* सम्प्रदाय अथवा परम्परा चलाने हेतु तत्त्वप्रचार प्रभावनाके अंगरूप प्रवृत्ति करना और ऐसी अपनी समझ अनुसार करते हुए सत्पुरुषकी आज्ञाकी अवगणना करनी।

○ लोक-दृष्टिसे दूर रहकर, ज्ञानीकी आज्ञानुसार अथवा परमार्थके लक्ष्य सहित धर्म-प्रभावना और तत्त्वप्रचारके कार्य करना (निजहितकी अप्रगटताकी खटक सहित)।

\* ग्रन्थ सम्बन्धी व्याख्यान / लेखनकी कुशलतासे अपनी महत्ता-प्रदर्शनकी इच्छा रहना, आचार्यों द्वारा प्रणीत उच्च कोटिके आध्यात्मिक न्याय बतलाते हुए अपनी महत्ता - प्रदर्शनका हेतु मुख्य

रहना।

○ शास्त्र-वांचन / लेखन आदि प्रवृत्तिमें निपुणता होनेपर भी उन प्रवृत्तियोंमें गुरु-उपकार / महापुरुषके उपकारको प्रदर्शित करना। आध्यात्मिक न्याय समझाते हुए जो आत्मलक्ष्य रहा हो उसी स्वलक्ष्यी भावसे, विनम्रतासे उनका निरूपण करना।

\* सत् शास्त्रका अविनय करना, सत्श्रवणकी उपेक्षा होना जिससे सत्श्रवणमें अनियमितता होना (श्रोताके लिए)।

○ सम्यक्ज्ञानका निमित्त समझते हुए शास्त्रका विनय करना, स्वाध्यायमें नियमित रहना (श्रोताके लिए)।

\* शास्त्रजीके विषय-प्रतिपादनको छोड़कर विषयान्तर प्रवर्तनरूप पद्धति सो वक्ताका शास्त्रके प्रति अविनय है।

○ शास्त्र-विषयसे हटकर विषयान्तर न हो, ऐसी जागृति रखना (वक्ताके लिए)।

\* सर्वज्ञ वीतरागदेवकी प्रतिमामें विकृति करना अथवा उनकी स्थापनाका विरोध या निषेध करना।

○ सर्वज्ञ वीतरागदेवकी प्रतिमाजीका स्वसंवेदनप्रकाशनमें कारणभूत जानकर, मूल आम्नायमें विकृति न हो - ऐसे अभिप्रायपूर्वक, स्व-पर हितार्थ उनकी स्थापना करना, करवाना और स्थापनाकी अनुमोदना करना।

\* बारह अंगके साररूप शुद्धात्मानुभूतिको प्राप्त सत्पुरुषके एक वचनमें अनन्त आगम गर्भित रहते हैं, तो भी उनके वचनोंको सम्मत करनेके लिए आगम-आधारका आग्रह रखना।

○ ज्ञानीके प्रत्येक वचनमें अनन्त नयोंकी संधि रहती है - ऐसा विश्वासकर उसके अर्थ-गांभीर्यको सम्मत करना।

\* श्रीमद्जीने 'आत्मसिद्धि' में गाया है कि :

“प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहि, परोक्ष जिन उपकार;  
अवो लक्ष थया विना, उगे न आत्मविचार” ॥१११॥

- उक्त पदानुसार प्रत्यक्ष सत्पुरुषका उपकार अर्थात् भक्ति न होनेसे गुणस्थानादि नापको मुख्यकर भक्तिमें न्यूनता होना अथवा अभक्ति होना अथवा अन्य परोक्ष ज्ञानीकी प्रत्यक्ष ज्ञानीके साथ तुलना करना।

○ उक्त पदानुसार प्रत्यक्ष सत्पुरुषका उपकार समझकर, सर्वाधिक उपकारी मानते हुए उनके चरणोंकी विनय-उपासना करना।

\* प्रत्यक्ष ज्ञानीकी अतिशय भक्तिको निमित्त-प्रधानता समझना।

○ अनन्त भव-उच्छेदको सजीवनमूर्तिके प्रत्यक्ष समागमका फल जानकर, उपादानमें पुरुषार्थकी जागृति सहित अनन्य भक्तिके परिणाम होना। (- ऐसे परिणाममें राग गौण है और ज्ञान तथा पुरुषार्थ मुख्य है)।

जिस जीवको भव-भ्रमणका भय नहीं रहता वह उक्त (\*) प्रकारके स्वच्छन्दमें वर्तता है, और जो जीव इस प्रकारके स्वच्छन्दसे बचकर आत्म-भाव / स्वच्छन्दके प्रतिपक्षी भावरूप (०) वर्तता है उसे दर्शनमोहका अभाव होकर मोक्ष पर्यंतकी सिद्धि मिलती है - ऐसा आश्वासन श्रीमद्गीके उपरोक्त 'आत्मसिद्धि' के पदमें प्रसिद्ध हुआ है।

(३३) लोक-मान्य धर्मश्रद्धालुताकी महत्ता, लोगोंकी नजरमें धर्म-श्रद्धालु दिखनेकी मनोवृत्ति, धार्मिक समाजमें राजनीतिरूप प्रवृत्ति-जो लोकसंज्ञाका ही अंग है, मिथ्यात्वको तीव्र करती है। ज्ञानीके अभिप्रायमें तो सत्यकी श्रद्धाकी तुलनामें संख्या गौण है। सत्यको संख्याकी अपेक्षा नहीं होती, लोकमान्यताकी अपेक्षा नहीं होती -

इस प्रकारकी दृढ़तामें मुमुक्षु जीवके दर्शनमोहका रस मन्द पड़ता है।

(३४) चार अनुयोगोंमेंसे किसी एक अनुयोगकी रुचि और तद्विषयक क्षयोपशम बढ़ने पर अध्यात्म तत्त्वकी गौणता होना सो सम्यक्त्व-प्राप्तिके प्रतिकूल है। सम्यक्त्व-समीप पहुँचनेवाला तो चारों अनुयोगोंमेंसे अध्यात्म-दृष्टि ही पल्लवित करता है और वही चारों अनुयोगोंमेंसे उनका यही तात्पर्य समझकर आगे बढ़ता है।

(३५) राग और परमें एकत्वबुद्धिपूर्वकके अध्यासका त्याग हुए बिना बाह्य त्यागमें धर्म / परमार्थकी कल्पना होनेपर कर्तृत्वरूप दर्शनमोह वृद्धिगत होता है। - ऐसी स्थितिमें उक्त प्रकारके अज्ञानी-त्यागीकी अनुमोदना होती है, उसका अनुसरण होता है। परन्तु प्रथम तो अध्यासके त्याग करने हेतु एकत्वरूप परिणमनके कालमें भी 'मैं ज्ञानमात्र हूँ'.... ऐसे भिन्न पड़नेका प्रयत्न / अभ्यास होना दर्शनमोहके नाशका उपाय है।

(३६) बाह्यतप व संयमके फलमें सिद्धिकी चाह अथवा अनुकूल संयोगोंकी अपेक्षा दर्शनमोहको तीव्र करनेवाले परिणाम हैं। परन्तु स्वरूप-प्राप्तिकी भावनापूर्वक बाह्य क्रियाके आग्रह बिना, हठ बिना, सहज संयम-तपके परिणाम होना योग्य है, जो भावनानुकूल हो।

(३७) सम्प्रदाय / समाजमें मान-स्थान पानेके लक्ष्यसे तप-त्याग करनेसे दर्शनमोह बढ़ता है, परन्तु मात्र अन्तरशुद्धिके लक्ष्यसे यथाशक्ति सहज त्याग-वैराग्य होनेपर दर्शनमोहका रस मन्द होता है।

(३८) व्रत-संयममें, देहकी क्रियामें आत्मबुद्धि होने पर देहात्मबुद्धि दृढ़ होनेसे मिथ्यात्वकी पुष्टि होती है। परन्तु देहसे भिन्न चैतन्यकी प्रतीति / अनुभवकी दृष्टिसे व्रत-संयमका प्रयोग करते

हुए दर्शनमोहका नाश हो सकता है।

(३९) स्वरूपके लक्ष्यसे, स्वरूपकी अनन्य रुचिपूर्वक, चैतन्यकी महिमाके कारण सहज चलता स्वरूप-चिंतवन और निजतत्त्वका घोलन दर्शनमोहको गला डालता है। परन्तु यथार्थ लक्ष्यरहित शुष्क-चंचल विकल्प, नयका भंगजाल, तर्क प्रधानताके आधारवाले विकल्पोंको बढ़ानेवाली विचारणा दर्शनमोहके रसको बढ़ानेमें कारणभूत होती है।

(४०) आत्मज्ञान होनेके पूर्व तत्त्व-प्ररूपणा में निःशंकता नहीं हो सकती - ऐसी संदिग्ध अवस्थामें उपदेशक होने पर, अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतोंकी रक्षा करते हुए व उसी प्रकार तत्त्वज्ञानमें विवाद होनेपर अपनी मान्यताको प्रतिष्ठाका विषय बनाने पर दर्शनमोह वृद्धिगत होता है। परन्तु जिसे दर्शनमोहका अभाव करना है उस आत्मार्थीका आत्मज्ञान होनेके पूर्व उपदेशकके पदसे दूर रहनेका अभिप्राय और प्रयत्न होता है; फिर भी यदि उदयवश शास्त्र-वांचन करना पड़ता हो तो मुख्यरूपसे परमार्थ-मार्गके अनुसरणमें हेतुभूत ऐसे सत्पुरुषकी भक्ति-गुणगान, सत्पुरुषके प्रति प्रमोदभावना तथा उनके प्रति अविरोध भावना व्यक्त करनेपर दर्शनमोहका रस मन्द पड़ता है यानी कि सजीवनमूर्तिके आश्रयसे तत्त्व-प्रचार / प्रसारकी प्रवृत्ति करनेमें दोषसे बचा जा सकता है।

(४१) उपदेशक स्वयं उपदिष्ट-विषयरूप न परिणमित होते हुए उपदेश करने पर, वैसे ही प्रतिपादनमें सिद्धांत खण्डित होनेसे, तथा अध्यात्मरस-रहिततासे दर्शनमोहका बन्ध करता है; कारण कि ऐसे प्रसंगोंमें रागरस/विकल्परस अथवा कथनशैलीका रस वृद्धिगत हो जाता है। जबकि सम्यक्त्वके समीप जानेवाला जीव यथार्थ समझको परिणमित करनेका पुरुषार्थ / प्रयोग करता है; और तत्त्व-



प्रतिपादनके कालमें उसकी रसपूर्वक ऐसी प्रवृत्ति होती है कि जिससे आत्मभावका आविर्भाव हो; इसी प्रकार कहीं भी सिद्धांत खण्डित न हो - ऐसे सूक्ष्म उपयोगपूर्वक प्रतिपादन करनेकी सावधानी / अभिप्राय रहनेसे दर्शनमोह तीव्र नहीं हो सकता, वरन् मन्दताको प्राप्त होता है।

(४२) तत्त्वप्रचार / धर्मप्रभावना आदि कार्योंमें रस अथवा महत्त्वके कारण प्रत्यक्ष सत्पुरुषके समागमके लिए अवकाश न रखना, अर्थात् प्रत्यक्ष-योगरूप सत्संगको गौण करनेसे दर्शनमोह बढ़ता है। (यह सूक्ष्म स्वच्छन्द है परन्तु भावि कालमें वह स्थूल हो जाता है), जिससे परम आदरका अभाव हो जाता है। ऐसे ही बाह्य प्रवृत्तियोंमें अग्रणी होने पर 'मैं भी कुछ हूँ' - ऐसा भाव वर्तनसे वह जीव अपनी अल्पता या लघुताको लक्ष्यमें नहीं ले पाता, अतः उसका स्वच्छन्द नहीं रुकता। परन्तु जिसके दर्शनमोहका नाश होनेवाला है वैसे मुमुक्षु जीवको वास्तविक आत्मभावपूर्वक सत्पुरुषके प्रति माहात्म्यबुद्धि होनेसे वह सर्व प्रकारकी बाह्य धर्मप्रवृत्ति / प्रचार-प्रसार करते हुए भी प्रत्यक्ष सत्संगको बहुत महत्त्व देता है; और 'मैं तो सेवक हूँ, दासानुदास हूँ, चरणरज हूँ .... ऐसी वृत्तिसे समागम करता है।

(४३) प्रत्यक्ष योगमें बोध-वचनोंका परम आदरभावसे एक मात्र आत्मार्थके लिए करनेवालेका दर्शनमोह टूटता है। परन्तु आत्मार्थ सिवाय अन्य किसी भी हेतुसे किया हुआ श्रवण दर्शनमोहको तीव्र करता है।

(४४) बाह्य-प्रसिद्धिके उदयमान प्रसंगोंमें (पूर्व पुण्योदयके कारण) - जिस जीवको मिठास लगा करती है वह दर्शनमोहको बढ़ाता है। आत्मार्थी जीवको तो बाह्य-प्रसिद्धिके प्रसंगोंको निःसार

जानते हुए उनसे दूर भागनेकी वृत्ति रहती है।

(४५) प्रत्यक्ष सत्पुरुषका समागम तो अनादि ओघसंज्ञा मिटनेका कारण है - ऐसा होनेपर भी जीव तीव्र दर्शनमोहवश ओघसंज्ञाका त्याग नहीं करता; ऐसी समझपूर्वक सत्समागम करनेमें ओघसंज्ञा मिटनेसे / भावभासन होनेसे दर्शनमोह मन्द पड़ता है।

(४६) बाह्य-दृष्टिके कारण अज्ञानी जीवके क्षयोपशम व वाक्पटुतासे आकर्षित होकर उसे ज्ञानी मानकर अनुमोदन / अनुसरण करनेसे दर्शनमोह बढ़ता है। आत्मार्थी जीव तो विद्वता और ज्ञान भिन्न-भिन्न विषय / वस्तु हैं - ऐसा जानते हुए परीक्षा कर, यथार्थ समझकर, विवेक करता है।

(४७) परम शांत, उपशम रस छलकता, वीतराग भाववाही जिन-बिंब, जिन-प्रतिमाजी सर्व क्षेत्रवर्ती भूत-वर्तमानभावीके अनन्त तीर्थकरों अर्हतोंका प्रतिरूप-प्रतिनिधियमान है। परन्तु ऐसे किसी एक जिनबिम्ब-जिनप्रतिमाजीकी स्थापनाका निषेध-अवमानना करना व अन्य प्रतिमाजीकी स्थापनादि करना, अथवा किसीकी मुख्यतावश किसी अन्यकी गौणता करना; अथवा ऐसी जिनप्रतिमाजीकी भी स्थापना-पूजा-भक्ति करना व अन्य कुदेवादिकी भी स्थापना-पूजादि करना-ये समस्त विपरीत अभिनिवेश पूर्वककी प्रवृत्तियाँ हैं।

सद्गुरु, सत्शास्त्र और सत्पुरुषको मानना, भक्ति-विनयादि करना तथा असद्गुरु, असत्शास्त्र व असत्पुरुषको भी मानना, भक्ति-विनय-प्रशंसादि करना - यह भी विपरीत अभिनिवेशका ही प्रकार है।

विद्यमान सत्पुरुषकी अवमानना-गौणता करना और अविद्यमान सत्पुरुषकी मुख्यता करना (देशना आदिके बहाने) अथवा एक सत्पुरुषकी भक्ति-विनयादि करना, परन्तु अन्य सत्पुरुषकी उपेक्षा-

गौणताका भाव भी विपरीत अभिनिवेशका ही परिणाम है।

- इत्यादिक अनेक स्थूल व सूक्ष्म विपरीत अभिनिवेशके प्रकार हैं। वे सर्व गृहीत मिथ्यात्वके पोषक व दर्शनमोहकी वृद्धि करनेवाले हैं।

परन्तु, जैसे विपरीत अभिनिवेश रहित नवतत्त्वका ज्ञान सो ही सम्यग्ज्ञान है- वैसे ही मात्र वीतराग देव-शास्त्र-गुरुको ही स्वीकार करनेवाले, उसी प्रकार विद्यमान सत्पुरुषको पहचान कर उन्हें देशनालब्धिका निमित्त जानकर, भव-भ्रमणके अभावका कारण समझकर, अत्यन्त भक्तिपूर्वक वर्तन करनेवालेका दर्शनमोह सहज ही घटता है और ज्ञानमें स्वरूप-निश्चय होने योग्य निर्मलताकी भूमिका उत्पन्न होती है।

(४८) हीन गुणीका संग किसी भी भूमिकाके साधकके पतनका कारण होता है। जो कुसंग अर्थात् हीन गुणीका संग भी करे और ज्ञानी अथवा विशेष गुणीका संग भी करे उसका सत्संग निष्फल जाता है। दुर्लभतासे प्राप्त ऐसा सत्संग निष्फल जानेका यह कारण (साधारणतः) खयालमें ही नहीं आता। अतः जैसे दर्शनमोह टालने हेतु सत्संगका विशेष महत्त्व है, वैसे ही हीन गुणीके संगकी रुचिकी गुण-प्रगटतासे दूर चले जानेमें महत्वपूर्ण भूमिका है अर्थात् उसकी परिणति पतित हो जाती है।

(४९) तत्त्वज्ञानका अभ्यास होनेपर भी व्यवहारनयका स्थूल या सूक्ष्म पक्ष रहनेसे दर्शनमोह बढ़ता है। परन्तु द्रव्य स्वभावकी पहचान हो तब निश्चयका यथार्थरूपसे पक्ष होनेपर, अर्थात् पक्षरूप पर्यायकी गौणता और स्वभावकी मुख्यता (पक्षमें दक्षता) होनेसे, दर्शनमोह घटता है।

(५०) निश्चयका कृत्रिमरूपसे पक्ष करनेपर, अर्थात् निश्चयकी

मात्र विकल्प-वाणीमें ही मुख्यता करनेसे, दर्शनमोह बढ़ता है। परन्तु स्वभावके भाव-भासनसे उत्पन्न महिमा, प्रतिक्षण वृद्धिगत होती स्वरूपमहिमा, अन्ततः पक्षातिक्रांत होनेपर दर्शनमोहका नाश होता है।

(५१) निज स्वभाव लक्ष्यगत होने पर अन्तर्मुखी चैतन्यवीर्यकी स्फुरणा होनेसे दशाकी दिशा बदलती है और जैसे-जैसे पुरुषार्थ बढ़ता है वैसे-वैसे सम्यक्त्व-समीपता होती है। परन्तु यदि बाह्य प्रवृत्तिमें वीर्य उलझता हो अथवा उग्रतासे जुड़ता हो तो स्वभावसे दूर जाना होता है।

(५२) दृष्टिके विषयभूत सामान्यतत्त्वका जोर 'यह...में' - ऐसा निज अस्तित्वका जोर दर्शनमोह मन्द करता है। परन्तु विकल्पका जोर विकल्पमयता प्राप्त कराकर निर्विकल्पतासे दूर ले जाता है।

(५३) जैसे-जैसे स्वरूपके ग्रहण करनेकी ज्ञान-सामर्थ्य बढ़ती जाती है वैसे-वैसे दर्शनमोह शिथिल होता जाता है। परन्तु स्वरूप-ग्रहणके पुरुषार्थके अभावमें उपयोग स्थूल होता जाता है, परिणतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, अर्थात् पर रसवाली परिणति यथावत् चालू रहती है, जिसमें पर-रस वृद्धिगत होता है।

(५४) दर्शनमोहके कारण जीव पर्यायदृष्टिसे पर्यायको ही देखा करता है, अनेकों प्रकारकी पर्यायमें ही अधिकता रहा करती है। जबकि स्वभावरस / चिद्रसवाली परिणतिमें किसी भी आलम्बन बिना (विभावरसकी मन्दतारूप पूर्व पर्यायके भी आलम्बन बिना) स्वतन्त्र धुन, और निर्विकल्प स्वभावके लक्ष्यका जोर चलने पर पर्यायदृष्टि नहीं रहती।

(५५) ज्ञेयाकार ज्ञानकी मुख्यता, अर्थात् ज्ञेय-लुब्धता, दर्शनमोहको बढ़ाती है। परन्तु 'सामान्य' के आविर्भावसे ज्ञानमें /

वेदनमें निजत्व होनेपर स्वसंवेदन उत्पन्न होता है, तब दर्शनमोहका नाश होता है।

(५६) साधनकी भूल भी मिथ्यात्वको दृढ़ करती है। क्योंकि प्रायः मन, वचन और कायके योगरूप परिणामादि किसी न किसी बाधकभावमें साधनकी कल्पना रहा करती है जबकि अन्तर्मुख होनेमें तो ज्ञान ही साधन है। यों यथार्थ रूपसे साधनका स्वीकार होने पर प्रयत्न 'मात्र ज्ञानरूप' स्थानमें ही केन्द्रित होनेसे दर्शनमोह घटता है।

(५७) चारों अनुयोगोंमेंसे किसी एक अनुयोगके विशेष क्षयोपशमके कारण, पक्षपातरूप राग होनेसे, किसी अन्य अनुयोगके प्रति स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे निषेध अथवा तिरस्कार / अनादर होना दर्शनमोहकी वृद्धिका कारण है। परन्तु यथार्थ भूमिकामें तो चारों ही अनुयोगोंका अपने-अपने स्थानमें यथारूप मूल्य है - ऐसा सुस्पष्ट समझमें आता है व उन सबका तात्पर्य वीतरागता जाननेमें आती है जो दर्शनमोहको मन्द करती है।

(५८) सम्यक्दर्शनादि अध्यात्म दशाओंकी महिमा सर्व सत्शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। वह महिमा तो त्रिकाली परमात्मस्वरूपप्रतिके जोरसे प्रगट हुई है। ऐसी यथार्थ महिमा आनेके बदले महिमा करनेवाले जीवका यदि मात्र पर्याय पर ही जोर रहा करे तो उसके पर्यायका एकत्व छूटनेके बजाय दृढ़ होता है और तब दर्शनमोह नहीं टूटता; परन्तु त्रिकालीके लक्ष्यपूर्वक ध्रुव स्वभावकी महिमा / जोर होनेपर दर्शनमोह टूटता है और यथार्थरूपसे अध्यात्मदशाकी महिमा वर्तती है।

दर्शनमोहके कारण जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्गसे विमुख वर्तनमें वेगवान होता है, उसका पुरुषार्थ विपरीततामें बलवान होता है और

उसे आत्म-स्वभावके प्रति रुचि नहीं होती; वह जीव निज-हितका विचार नहीं कर सकता वरन् अहितरूप भावोंमें रचा-पचा रहता है। शास्त्रकर्ता कहते हैं कि जीवका स्वभाव तो सम्यक् रूपसे परिणमित होनेका होने पर भी दर्शनमोहसे मूर्छित होकर वह मिथ्यात्वभावसे परिणमन करता है। इस प्रकार दर्शनमोहको स्वभावका घातकभाव जानकर, तद्सम्बन्धी अनेक पहलुओंको लक्ष्यमें रखते हुए ही आत्मार्थी जीवको धर्मप्रवृत्तिमें प्रवृत्त होना योग्य है, अन्यथा संसारसे छूटनेके बदले संसार-वृद्धिका कारण होनेकी सम्भावना रहती है। - अस्तु !

# श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१ जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
०२ द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग - पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्त्वचर्चा)	३०-००
०३ दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०४ दंसणमूलो धम्मो (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
०५ निर्भात दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
०६ परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	
०७ प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
०८ मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
०९ विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन)	१०-००
१० सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी कुल्लक)	१५-००
११ तत्त्वानुशीलन (भाग १-२-३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
१२ अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	
१३ ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	
१४ मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	
१५ सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छः पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
१६ आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-५६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१७ परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१८ अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
१९ धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	
२० सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय	२५.००
२१ कुटुम्ब प्रतिबंध	२५.००

૨૨	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૬૬, ૪૪૯, ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈકે પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૨૩	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામી કે પ્રવચન)	૭૫-૦૦
૨૪	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહિનશ્રી ચંપાબહન દ્વારા ગુરુ ભક્તિ)	૧૫-૦૦
૨૫	આત્મસિદ્ધિ શાસ્ત્ર પર પ્રવચન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી દ્વારા)	૫૦-૦૦
૨૬	કહાન રત્ન સરિતા (પરમાગમસાર કે વિભિન્ન વચનામૃતોં પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ કે પ્રવચન)	૩૦.૦૦
૨૭	સુવિધિ દર્શન (સુવિધિ લેખ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ કે પ્રવચન)	૪૦.૦૦
૨૮.	વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કે નાયરોવી મેં હુએ પ્રવચન)	૨૦.૦૦

## વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧ ગુરુગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભાઈ ત)	૦૫-૦૦
૦૨ જિજ્ઞાસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૦૩ દાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત)	૦૨-૦૦
૦૪ દ્રવ્યદૃષ્ટિપ્રકાશ ભાગ-૩ (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીની તત્ત્વચર્યા)	૦૪-૦૦
૦૫ દસલક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂ. ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૦૬ ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૦૭ નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૦૮ પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૦૯ પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત)	૧૧-૨૫
૧૦ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૧૧ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૨ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૧૨ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૩ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૧૩ પ્રવચન નવનીત ભાગ-૪ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ શાિ તઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૧૪ પ્રવચન પ્રસાદ ભાગ-૧-૨ (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦



૧૫	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૧૬	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૭	ભગવાન આત્મા (દ્રવ્યદૃષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૮	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૧૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૨૦	આધ્યાત્મિક પત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૨૧	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	પ્રેસમાં
૨૨	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૨૩	બીજું કાંઈ શોધ મા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૨૪	મુમુક્ષુતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૫	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભુત છ પદનો અમૃત પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૬	આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૭	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૮	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૨૯	સિદ્ધ પદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦ ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૦	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૧	વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં 'બહેનશ્રીના વચનામૃત' પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦.૦૦
૩૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫.૦૦
૩૪	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૬૬, ૪૪૯, ૫૭૨, પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૫	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) ('પરમાગમસાર' માંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૬	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં 'સમયસાર' પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫.૦૦

૩૭	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત 'સુવિધિ' લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫.૦૦
૩૮	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૯	સમકિતનું બીજ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦.૦૦
૪૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૧	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) ('પરમાગમસાર' માંથી ક્રમબદ્ધપર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦.૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૩	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૪	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) 'કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) 'કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૬	દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) 'દ્રવ્યસંગ્રહ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો.	૨૦.૦૦
૪૭	દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) 'દ્રવ્યસંગ્રહ' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનીજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો.	૨૦.૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) 'પ્રવચનસાર' શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦.૦૦
૪૯	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) 'બહેનશ્રીનાં વચનામૃત' ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	(પ્રેસમાં)

**वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से  
प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या**

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्धिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमामगसरा (हिन्दी)	४०००

२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भात दर्शननी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भात दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००

६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	२५००
६५	वचनामृत रहस्य	१०००
६६	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३०००
६७	कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती)	२५००
६८	प्रवचन सुधा (भाग-१)	१०००
६९	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७०	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७१	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७२	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	७५०
७३	प्रवचन सुधा (भाग-२)	७५०
७४	समयसार दोहन	७५०
७५	गुरु गुण संभारणा	७५०
७६	सुविधिदर्शन	१०००
७७	समकितनुं बीज	१०००
७८	स्वरूपभावना	१०००
७९	प्रवचन सुधा (भाग-३)	१०००
८०	प्रवचन सुधा (भाग-४)	१०००
८१	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१	१०००
८२	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२	१०००
८३	सुविधि दर्शन (हिन्दी)	१०००
८४	प्रवचन सुधा (भाग-५)	१०००
८५	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१)	१०००
८६	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२)	१०००
८७	वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००

पाठकों की नोंध के लिए

---

पाठकों की नोंध के लिए

## पाठकों की नोंध के लिए